P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

केन्द्र–राज्य सम्बंध : वर्तमान परिप्रेक्ष्य

मनोज कुमार
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
सांगोद, (कोटा) राजस्थान

सारांश

भारतीय संघवाद में केन्द्र सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है किन्तु फिर भी राज्य केन्द्र सरकार की प्रशासनिक इकाईयां मात्र नहीं है। ग्रेनविल ऑस्टिन लिखते हैं, ''भारत नई दिल्ली नहीं है बल्कि राज्यों की राजधानियां भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी है किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्र सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती हैं, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्र सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक–दूसरे पर निर्भर हैं।''

वर्तमान परिस्थितियों में जो संघीय व्यवस्था विकसित हो रही है उसमें केंद्र भी कमजोर है और राज्य भी कमजोर हैं। केन्द्र सरकार इस कारण कमजोर है कि उस का अस्तित्व ही छोटे–छोटे राजनैतिक दलों की दया पर निर्भर करता है; राज्य इसलिए शक्तिशाली नहीं हो पाए कि उनमें एकता और मतैक्य नहीं हैं। वे अपने–अपने स्वार्थ के लिए खुद आपस में लड़ रहे हैं। इस प्रकार सौदेबाजी दो तरह की हो रही है; एक ओर स्वयं राज्यों में आपस में और दूसरी ओर केंद्र और राज्यों के बीच। रूचिकर बात यह है कि इस सौदेबाजी में माँगने वाले और देने वाले एक ही लोग हैं, अर्थात राज्यों में सत्तारूढ़ दल जो केंद्र सरकार से अधिक शक्तियों की माँग कर रहे हैं वही केंद्र सरकार के घटक दल भी हैं।

भारत की संघीय व्यवस्था संविधान और संविधान बनाने वालों के मन्तव्य के विपरीत दिशा में विकसित हो रही है। यदि निकट भविष्य में सुगठित राष्ट्रीय दलों का विकास न हुआ तो भारतीय संघ एक ढीले संघ में परिवर्तित हो सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सुदृढ़ केन्द्र के बावजूद झुकाव केन्द्र और राज्यों के बीच सहयोगी साझेदारी के सम्बन्ध की ओर है। सहयोगी सम्बन्ध में स्वतन्त्रता और परस्पर निर्भरता दोनों होती हैं और यही समकालीन संघवाद की विशिष्टता है।

मुख्य शब्द : संघवाद, केन्द्र, राज्य, सौदेबाजी, विवाद, राजनीतिक दल।

प्रस्तावना

केन्द्र–राज्य सम्बंध से अभिप्राय किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र–राज्य में संघवादी केन्द्र और उसकी इकाइयों के बीच के आपसी सम्बंध से होता है। विश्व भर में लोकतंत्र के उदय के साथ राजनीति में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को एक नई परिभाषा मिली है।

भारत में स्वतंत्रता उपरांत केन्द्र–राज्य सम्बंध का मसला अत्यधिक संवेदनशील मामला रहा है। विषय चाहे अलग भाषाओं की पहचान, असमान विकास, राज्यों के गठन का हो, पुनगर्ठन का हो, या फिर विशेष राज्य का दर्जा देने से जुड़ा हो। ये सब केन्द्र–राज्य सम्बंधों की सीमा में आते है। केन्द्र और राज्य के बीच में इनको लेकर क्या आपसी समझ है, यही महत्वपूर्ण होता है।

भारतीय संविधान में भारत को 'राज्यों का संघ' कहा गया है न कि संघवादी राज्य। भारतीय संविधान में विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय शक्तियों का सुस्पष्ट बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है। संविधान की सातवीं अनुसूची में सभी विषयों को तीन सूचियों में बांटा गया है संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। समवर्ती सूची के विचार को आस्ट्रेलिया से लिया गया है। संविधान में केन्द्र व राज्यों के बीच विषयों का स्पष्ट रूप से बंटवारा होने के बावजूद केन्द्र व राज्यों के बीच प्रारम्भ से विवाद उठते रहे है। कई राज्य केन्द्र से और अधिक स्वायत्तता की मांग करते रहे है

भारत मे संघीय व्यवस्था होने के बावजूद राज्यों की स्थिति केन्द्र की अपेक्षा कमजोर है। ऐसे संवैधानिक प्रावधान इसलिए किये गये है ताकि देश की अखण्डता पर आंच ना आये। लेकिन केन्द्र से राज्यों की सबसे ज्यादा शिकायत

वित को लेकर है क्योंकि राज्यों के पास स्वयं के आर्थिक संसाधन नहीं है उन्हें केन्द्र के अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है जो वित्त आयोग की सिफारिश पर राज्यों को अनुदान देते है। अनुदान देते समय केन्द्र सरकार राज्यों के साथ भेदभाव करती है। समान दल की सरकार वाले राज्यों में ज्यादा अनुदान दिया जाता है। यदि केन्द्र सरकार यह भेदभाव नहीं करे तो केन्द्र–राज्य के बीच उठने वाले अधिकांश विवाद कम हो सकते है साथ ही ऐसी व्यवस्था हो कि राज्य स्वयं के आर्थिक संसाधन विकसित करे ताकि उनकी केन्द्र पर निर्भरता कम हो सके।

अध्ययन का उद्देश्य

वर्तमान शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:–

1. केन्द्र व राज्य के मध्य पुराने विचार वैभिन्नय के साथ–साथ नये विरोध के क्षेत्रों का अध्ययन करना।
2. केन्द्र–राज्य संबंधों में तनाव के प्रमुख कारणों की विवेचना करना।
3. केन्द्र व राज्यों के बीच उपजने वाले विवादों के समाधान हेतु समय–समय पर गठित आयोगों की सिफारिशों का अध्ययन करना।
4. भारत में संघीय व्यवस्था के प्रतिमान का अध्ययन करना।
5. केन्द्र–राज्य संबंधों के सन्दर्भ में योजना आयोग (नीति आयोग), वित्त आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद् की भूमिका का अध्ययन करना।
6. केन्द्र–राज्य संबंधों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों की भूमिका का अध्ययन करना।
7. केन्द्र–राज्य संबंधों के सन्दर्भ में भारतीय संविधान के प्रावधानों का विस्तृत विवेचन करना।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रमुख रूप से द्वितीयक शोध सामग्री का प्रयोग किया जाएगा। केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर समय–समय पर महत्वपूर्ण विद्वानों और विचारकों की पुस्तकें प्रकाशित होती रही है जिनके माध्यम से केन्द्र–राज्य संबंधों के इतिहास तथा तात्कालीन प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास किया जाएगा। इसी परिप्रेक्ष्य में वर्तमान में घटित घटनाओं, प्रकाशित खबरों, आलेखों तथा विभिन्न विचारकों के विश्लेषणों के माध्यम से नवीन उभरती परिस्थितियों को समझने में सहायता मिलेगी। विभिन्न आयोगों के प्रतिवेदनों के सुझावों की व्यवहारिकता व उपयोगिता का अध्ययन किया जाएगा।

साहित्यावलोकन

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के स्वरूप को लेकर विचारकों ने समय–समय पर अपने अभिमत प्रकट किये हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न अध्ययन प्रकाशित हुए और सरकार द्वारा प्रतिवेदन और सुझाव दिये गए। इन अध्ययनों और प्रतिवेदनों की समीक्षा यहां की गई है यथा–

अशोक चन्द्रा की पुस्तक 'फेडरलिज्म इन इण्डिया ' 1968 में भारतीय शासन एवं राजनीति का वर्णन किया गया है जिसमें केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में उत्पन्न विवादों का वर्णन करने के साथ ही अपने अध्ययन का मुख्य आधार केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के समाधान कारक के रूप में गठित ''योजना आयोग'' को बनाया है तथा इस पुस्तक में योजना आयोग की स्थापना, उसके कार्य व शक्तियों का वर्णन तथा उनका केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर प्रभाव आदि का वर्णन व विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सुभाष कश्यप द्वारा सम्पादित पुस्तक 'यूनियन स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया ' 1969 में प्रबुद्ध विचारकों के आलेख संग्रहीत है, जिनमें केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के विभिन्न पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के प्रथम भाग में राजनीतिक एवं प्रशासनिक सम्बन्धों पर चर्चा की गयी है। द्वितीय भाग वित्तीय सम्बन्धों और योजना आयोग पर केन्द्रित है। तृतीय और अन्तिम भाग में संघ राज्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। आलेखों के अनुसार भारतीय संघीय व्यवस्था अपनी युवावस्था में होने के कारण विचार मंथन और चिन्तन व्यवस्था की आवश्यक परम्पराओं का विकास नहीं कर पाई। संक्रमणकालीन समाज में नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के विकास की आवश्यकता रहती है ऐसे में केन्द–राज्य सम्बन्धों की समीक्षा और पुनर्विचार आवश्यक है। इस पुस्तक में अशोक मेहता, ए.के.चन्द्रा, एल.एम. सिंघवी, इकबाल नारायण, ऑर्थर डब्लू. मेकमेहन, सी.पी. भाम्भरी, जी.पी. श्रीवास्वव आदि के आलेख संग्रहीत है।

डब्लू. एच. मोरिस जोन्स की पुस्तक 'भारतीय शासन एवं राजनीति' 1970 में लेखक ने भारतीय शासन एवं राजनीति के दिशा निर्धारण में आजादी के साथ मिली विरासतों के महत्व, भारतीय राजनीति व समाज के बीच अन्तः क्रिया आदि का बारीकी से अध्ययन किया है। लेखक ने अपने विश्लेषण में स्पष्ट किया है कि देश की आजादी के बाद 20 वर्षो तक जिस कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में राजनीतिक स्थिरता बनी रहीं, उसे 1967 के आम चुनाव में कई स्थानों पर पराजय का मुँह देखना पड़ा और 1968–69 में 5 राज्यों में हुए चुनावों में भी वह अपनी स्थिति सुधार नहीं पाई। 1969 के अगस्त–सितम्बर माह तक कांग्रेस पार्टी जो दल–बदल के कारण दुर्बल तो पहले से ही थी परस्पर दो गुटों में विभाजित हो गयी थी। घटनाओं की श्रृंखलाओं ने स्पष्टतः दल प्रणाली में तब्दीली पैदा कर दी साथ ही इसी वजह से केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच बदलते सम्बन्धों के कारण कड़वाहट और खींचतान पैदा हो गयी। धीरे–धीरे उनके आपसी सम्बन्ध खराब होते चले गये।

के. मैथ्यू कुर्यन और पी.एन. वर्गीस ने अपनी पुस्तक 'सेण्टर स्टेट रिलेशन' 1981 केन्द्र में व राज्यों के मध्य उत्पन्न होती कठिनाइयों व विवादों के बारे में चर्चा करने के लिए इनके सम्बन्धों के अतीत का अध्ययन किया, जिससे कि केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के भावी सम्बन्धों का अन्दाजा हो सके। लेखक का मानना है कि केन्द्र व राज्य के दोहरे सम्बन्धों को देखकर ''एकता व विभाजन'' की कहावत चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है। लेखक का कहना है कि स्वतंत्रता के समय संविधान द्वारा जिस प्रकार से शक्तियों का बंटवारा किया गया था वर्तमान में व्यवहार में वो केन्द्र–राज्य के मध्य नहीं दिखाई पड़ता। वह संतुलन अब बिगड़ने सा लगा है जिससे केन्द्र व

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राज्यों के मध्य संवैधानिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विवाद उठ खड़े हुए हैं।

के.एम. पाणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन स्टेट्स एण्ड दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया' 1985 में एक अनोखी भारतीय संघीय व्यवस्था व शासन को वर्णित करते हुए राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि व शासन व्यवस्था के बारे में लिखा है। उन्होंने भारत की शासन व्यवस्था को एक ऐतिहासिक हादसे का परिणाम बताया है। राज्यों की यह शासन व्यवस्था व कार्यप्रणाली कहीं पर ब्रिटिश शासन व्यवस्था की नकल है तो कहीं स्टेटमैन के वक्तव्यों तथा राजनीतिक विचारकों के विचारों का परिणाम है।

भवानी सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'गवर्नरः रोल आईडेन्टिफीकेशन एण्ड सरकारिया कमीशन' 1991 में राज्यपाल के पद, ब्रिटिश शासन व्यवस्था में उस पद के स्थान तथा पद की उत्पत्ति के बारे में अध्ययन किया गया है साथ ही भारतीय शासन व्यवस्था में केन्द्र व राज्यों के अलग–अलग बंटवारे के साथ इस पद की भूमिका का वर्णन करते हुए उसके कार्यो को विश्लेषित किया गया है। अनुच्छेद 356 के अनावश्यक उपयोग से अधिकतर केन्द्र–राज्य सम्बन्ध कड़वे बने रहे। इस राजनीतिक व्यवस्था में एक परिवर्तन चाहने तथा राज्यपाल की स्थिति में भी कुछ परिवर्तन को लेकर सरकारिया आयोग ने 15 जून, 1988 को केन्द्र सरकार के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सरकारिया आयोग ने केन्द्र से अपील की है कि राज्यपाल को अपने हाथों की कठपुतली समझने के बजाय उसे केन्द्र एवं राज्य के मध्य कड़ी बनाने वाला पद बनाया जाए।

धर्मचन्द जैन की रचना 'केन्द्र–राज्य सम्बन्ध' (संस्थाओं की भूमिका), 1999 में लेखक ने केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को लेकर संविधान में वर्णित इससे सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं का अध्ययन किया है तथा अलग–अलग संस्थाओं को पृथक–पृथक अध्यायों में लिखकर केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को प्रभावित करने में उनकी भूमिका का विवेचन किया है। लेखक ने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, संसद, न्यायपालिका, राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सांवैधानिक स्थिति, शक्तियाँ, कार्य व निर्वाचन पद्धति का वर्णन करते हुए उनके केन्द्र व राज्य सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले कारणों जैसे आपातकाल, अनुच्छेद 356, नीतियों का निर्माण, मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल की भूमिका, केन्द्र–राज्यों के मध्य हुए विवादों पर न्यायालय के निर्णय आदि की व्याख्या की है।

गीता चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था' 2000 में भारत में संघ–राज्य सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए स्वतंत्रता से पूर्व की केन्द्र–राज्यों की स्थिति तथा स्वतंत्रता के पश्चात् के केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का वर्णन किया है। केन्द्र व राज्यों के मध्य विधायी, प्रशासनिक, वित्तीय और न्यायिक सम्बन्धों का वर्णन करते हुए केन्द्र–राज्यों के मध्य उभरते हुए टकराव के मुद्दों की व्याख्या करने के साथ ही टकराव को कम करने के लिए विभिन्न सुझाव दिए हैं।

एस.के. जैन की रचना 'इण्डियन फेडरलिज्म' 2017 में भारतीय संघवाद की विस्तृत व्याख्या करते हुए इसे सर्वाधिक जनसंख्या वाला संघवादी शासन बताया गया है। लेखक ने इस पुस्तक में सांवैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संघवाद के विकास की व्याख्या की है।

हिमांशु रॉय तथा महेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'इण्डियन पॉलिटिकल सिस्टम ' 2018 में बताया गया है कि भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतंत्र की संसदीय प्रणाली के साथ–साथ संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है तथा भारत में सामाजिक संरचना दलीय व्यवस्था, संघीय सम्बन्ध तथा सरकारी नीतियों ने भारतीय लोकतंत्र को मजबूती दी है।

केन्द्र–राज्य सम्बंध

संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच किए गए शक्ति विभाजन के संदर्भ में उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर निम्नलिखित रूप से विचार किया जा सकता है–

विधायी सम्बन्ध

संविधान के 11वें भाग में केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों का उल्लेख किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 245 में कहा गया है कि ''इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी तथा किसी राज्य का विधानमण्डल उस सम्पूर्ण राज्य के अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा।'' इस प्रकार केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विधायिनी क्षेत्राधिकार को संविधान स्पष्ट रूप से विभाजित करता है। अनुच्छेंद 246 उन विषयों का उल्लेख करता है जिन पर केन्द्र तथा राज्य सरकारें कानून बनाने का अधिकार रखती है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि संसद संघ सूची में वर्णित लगभग सभी विषयों पर कानून बनाने की अनन्य शक्ति रखती है। और इसमें 96 विषय है। संघ सूची में वर्णित लगभग सभी विषय राष्ट्रीय महत्व के हैं। उदाहरण के लिए सुरक्षा, सैन्य बल, विदेश–सम्बन्ध, संधियाँ, युद्ध तथा शान्ति, नागरिकता, रेलवे, डाक तथा तार, मुद्रा निर्माण इत्यादि।

राज्य सूची में 66 विषय है। संविधान के अनुच्छेद 246(3) में यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य को राज्य सूची में वर्णित किसी भी विषय पर कानून बनाने का अनन्य अधिकार होगा। राज्य सूची में दिए गए विषयों में सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, न्याय प्रशासन, स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई आदि महत्त्वपूर्ण विषय सम्मिलित हैं।

संविधान की समवर्ती सूची में 47 विषय हैं जिन पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों को दिया गया है। इनमें मुख्य रूप से ऐसे विषयों का समावेश है जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में विधि सम्बन्धी एकरूपता का होना आवश्यक समझा गया है। इस सूची में विवाह तथा तलाक, संपत्ति का हस्तान्तरण, ठेके, ट्रस्ट, दीवानी प्रक्रिया, औषधियाँ, आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन, ट्रेड यूनियन, सामाजिक सुरक्षा, श्रमिक कल्याण आदि जैसे विषय शामिल हैं। यद्यपि समवर्ती सूची में दिए गए किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र तथा राज्य दोनों ही को प्राप्त है, किन्तु यदि समवर्ती सूची में दिए गए किसी विषय पर

केन्द्र तथा राज्य सरकारें दोनों कानून बनाती हैं, तो संघ सरकार द्वारा बनाया गया कानून मान्य होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि समवर्ती सूची पर राज्य सरकारों का केवल उस सीमा तक ही अधिकार है जहाँ तक केन्द्र सरकार उस सूची का प्रयोग न करे, लेकिन इस सिद्धान्त का एक अपवाद भी है। संविधान के अनुसार यदि समवर्ती सूची में दिए गए किसी विषय पर संसद के द्वारा कानून बनाया जा चुका है और बाद में कोई राज्य विधानमण्डल उसी विषय पर एक कानून बनाकर उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर लेता है, तो ऐसी दशा में राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानून मान्य और संसद द्वारा पारित कानून निरस्त समझा जाएगा।

संविधान के अनुच्छेद 248(1) में यह कहा गया है कि संसद को उन सभी विषयों पर कानून बनाने का अनन्य अधिकार है जिनका उल्लेख राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में नहीं हैं। अर्थात् उन सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार को है जिन विषयों का उल्लेख संविधान की तीनों सूचियों में नहीं है। दूसरे शब्दों में अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र सरकार के पास हैं। जबकि अमेरिका में अवशिष्ट शक्तियाँ राज्य सरकारों को दी गई हैं। भारतीय संविधान के अनुसार अवशिष्ट शक्तियों के अन्तर्गत ऐसे करों को लगाने का अधिकार भी सम्मिलित है जिनका उल्लेख संविधान की किसी सूची में स्पष्ट रूप से नहीं है।

यद्यपि संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों की विधायिनी शक्तियों का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है, लेकिन व्यावहारिक रूप से संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनके द्वारा केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की विधायिनी शक्तियों में आसानी से हस्तक्षेप कर सकती है। संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित करे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि संसद राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर भी कानून बनाये, तो संसद को राज्य सूची के उस विषय पर भी कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। इस प्रकार बनाया गया कानून उस समय तक लागू रहेगा जब तक कि राज्य सभा का उक्त प्रस्ताव प्रभावी रहेगा, लेकिन किसी भी दशा में यह प्रस्ताव एक वर्ष से अधिक लागू नहीं रह सकता।

अनुच्छेद 250 के अनुसार केन्द्र सरकार को आपातकालीन उद्घोषणा के समय राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। इस प्रकार बनाया गया कोई कानून आपातकालीन उद्घोषणा की समाप्ति के 6 मास पश्चात् तक लागू रहेगा।

उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 252 में यह कहा गया है कि यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल यह प्रस्ताव पारित कर दें कि राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर केन्द्रीय विधानमण्डल कानून बनाए तो संसद उस विषय पर कानून बनाने की अधिकारी होगी, लेकिन यह कानून केवल उन राज्यों में ही लागू हो सकेगा जिन्होंने उक्त प्रस्ताव पारित किया है अथवा जो उस कानून के निर्माण के बाद अनुच्छेद 251 में बताई गई प्रक्रिया के अनुसार उस प्रकार का प्रस्ताव पारित करें। इस प्रकार बनाया गया कानून उस समय तक लागू रहेगा, जब तक कि सम्बन्धित विधानमण्डल उस कानून को निरस्त करने की प्रार्थना संसद से न करें।

अनुच्छेद 253 में संसद को विदेशों के साथ की हुई संधि अथवा समझौते आदि को लागू करने के उद्देश्य से किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। जेनिंग्स का कहना है कि यह इतना विस्तृत तथा अस्पष्ट अधिकार है कि केन्द्र सरकार इनका प्रयोग करके राज्यों की विधायिनी शक्ति में अनुचित हस्तक्षेप कर सकती है।

प्रशासकीय सम्बन्ध

संविधान का भाग 11 अध्याय 2, केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासकीय सम्बन्धों को निश्चित करता है। संविधान के अनुच्छेद 256 में कहा गया है कि ''प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा कि जिससे संसद द्वारा निर्मित विधियों का तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का जो उस राज्य में लागू हैं, पालन सुनिश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो कि भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक दिखाई दे।''

यद्यपि केन्द्र सरकार को संघ सूची तथा समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है लेकिन उन कानूनों का कार्यान्वयन बहुत कुछ राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। राज्य सरकारें केन्द्र द्वारा बनाए गए कानूनों की उपेक्षा न करने पाएँ और केन्द्र द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन करें, इसलिए केन्द्र के पास निर्देश देने की उपर्युक्त शक्ति का होना आवश्यक समझा गया। अनुच्छेद 257 राज्यों की कार्यकारिणी शक्ति पर एक और प्रतिबंध लगाता है। इसमें कहा गया है कि ''प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन न हो या उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक दिखाई दे।'' इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कार्यकारिणी क्षेत्र में भी संविधान संघ सरकार की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता देता है। इसी अनुच्छेद में संघ सरकार को राष्ट्रीय तथा सैन्य महत्त्व के संचार के साधनों के निर्माण तथा रेल व्यवस्था के संरक्षण के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 256 और 257 के बीच मूल अन्तर यह है कि पहले वाला अनुच्छेद राज्यों पर एक सामान्य उत्तरदायित्व सौंपता हैं, जबकि दूसरा अनुच्छेद राज्यों पर विशिष्ट उत्तरदायित्व डालता है कि राज्य सरकारें कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगी जिससे संघ सरकार को अपनी कार्यकारिणी शक्तियों के प्रयोग करने में कोई बाधा या हानि पहुँचती हो। इन अनुच्छेदों का संविधान में इतना अधिक महत्त्व है कि इन्हें राज्यों पर बाध्यकारी बनाने के लिए अनुच्छेद 356 इस बात की स्पष्ट घोषणा

करता है कि यदि कोई राज्य संघ सरकार द्वारा दिये जाने वाले निर्देशों का उल्लंघन करता है अथवा उनका पालन नहीं करता तो राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार होगा कि वह उस राज्य में सांवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा करके उसका शासन अपने हाथ में ले लें।

संविधान के 42वें संशोधन द्वारा एक नए अनुच्छेद 257ए का अन्तःस्थापन किया गया था जिसमें यह प्रावधान था कि यदि किसी राज्य में शान्ति और व्यवस्था की गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाए, तो उसको नियन्त्रित करने के लिए केन्द्र सरकार को उस राज्य में सेना भेजने का अधिकार होगा। इस संशोधन के पूर्व भी केन्द्र सरकार शान्ति और व्यवस्था के नाम पर कुछ राज्यों में सी.आर.पी. एफ. भेज चुकी थी जिसका घोर विरोध उन राज्यों के द्वारा किया गया था और केन्द्र सरकार की इस शक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखा गया था। उपर्युक्त संवैधानिक संशोधन का उद्देश्य केन्द्र सरकार की सेना भेजने की शक्ति को वैधानिक रूप प्रदान करना था। संविधान के 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 257ए को संविधान से निकाल दिया गया है और इस प्रकार राज्य प्रशासन में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को कम करने का प्रयास किया गया है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से इस संशोधन से कोई अन्तर न होगा, क्योंकि पहले ही की भाँति केन्द्र सरकार राज्यों में शान्ति सुव्यवस्था स्थापित करने के नाम पर अब भी सी.आर.पी.एफ. भेज सकेगी।

संविधान संघ–कार्यकारिणी को यह भी अधिकार देता है कि वह किसी राज्य सरकार की सहमति से उस सरकार अथवा उसके पदाधिकारियों को ऐसे कार्यो को सौंप सकती है जो संघ–कार्यकारिणी की शक्तियों के अर्न्तगत आते हों। संसद को यह भी अधिकार है कि वह कानून के द्वारा राज्यों के पदाधिकारियों को कुछ अधिकार तथा कर्त्तव्य सौंप सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 258 में किए गए सातवें संविधान संशोधन के अनुसार राज्यपाल राज्य सरकार की कार्यकारिणी सत्ता को कार्यान्वित करने का कार्य सशर्त या बिना किसी शर्त केन्द्र सरकार या उसके अधिकारियों को सौंप सकता हैं। विभिन्न राज्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि यदि वह आवश्यक समझे तो एक अन्तर्राज्य परिषद की नियुक्ति कर सकता है। इस परिषद का उद्देश्य राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों की जाँच करना तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक मंत्रणा देना, ऐसे विषयों पर विचार करना तथा उनकी जाँच करना जो समस्त राज्यों अथवा कुछ राज्यों अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के पारस्परिक हितों से सम्बन्धित हो तथा ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश देना, विशेष रूप से उस विषय के सम्बन्ध में अपनाई गई नीति तथा कार्यवाही के अच्छे समन्वय के हेतु सिफारिश करना है।

संविधान के उपर्युक्त उपबन्धों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रशासकीय क्षेत्र में भी राज्य सरकारों की शक्तियाँ काफी सीमित है। और केन्द्र सरकार बड़ी हद तक राज्य सरकारों पर नियंत्रण रख सकती है।

वित्तीय सम्बन्ध

भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच आर्थिक शक्तियों का वितरण किया गया है और उनकी आय के स्रोतों का उल्लेख संविधान में पाया जाता है। राज्य सूची में वर्णित आय–स्रोतों पर राज्य सरकारों का अनन्य अधिकार है। इस सूची में 19 राजस्व स्रोतों का उल्लेख है, इनमें भू–राजस्व, भूमि और भवनों पर कर, बिजली के उपभोग और विक्रय पर कर, कृषि भूमि पर उत्तराधिकार कर, समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय–विक्रय पर कर, कृषिगत आय पर कर, विलास वस्तुओं पर कर आदि उल्लेखनीय है। प्रत्येक राज्य अपनी विधियों के अनुसार इन करों को आरोपित तथा एकत्रित करता है। संविधान सामान्य कर की व्यवस्था नहीं करता, क्योंकि समवर्ती सूची में राजस्व का कोई भी प्रावधान नहीं हैं।

संघ सरकार के अधिकार में राजस्व के 12 विषय हैं जिनमें सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृषिगत आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर, विदेशी ऋण, निगत कर, संघ सरकार की सम्पत्ति, डाक–तार, रेलवे, रिजर्व बैंक, कृषि भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति कर, सम्पदा शुल्क आदि मुख्य हैं। यह भी महसूस किया गया कि राज्य सरकारों को दिये गये दायित्वों को पूरा करने के लिए उनकी आय के साधन पर्याप्त न समझे गये, अतः संविधान ने यह प्रावधान किया है कि संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाले आय के साधनों से प्राप्त होन वाली आय में राज्यों को भागीदार बनाया जाए, इस सम्बन्ध में संविधान में निम्नलिखित उपबंध किये गए हैं–

1. कुछ ऐसे कर होते हैं जो संघ सरकार द्वारा लगाए जाते हैं और जिन्हें राज्य सरकारें वसूलती हैं और वही उस धन को खर्च करती है। इस तरह के करों में चेक, हुंडी, प्रामिजरी नोट, बीमा पालिसी, लेटर्स ऑफ क्रेडिट, औषधियाँ और श्रृगांर की वस्तुओं इत्यादि पर लगाये जाने वाले कर सम्मिलित हैं।
2. कुछ कर ऐसे हैं जो संघ सरकार द्वारा लगाए तथा वसूल किये जाते हैं लेकिन उनसे होने वाली आय सम्बन्धित राज्य सरकारों को दे दी जाती है। उदाहरण के लिए कृषि संबंधी सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर लगाए गए टैक्स, कृषि सम्बन्धी सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर स्टेट ड्यूटी, रेलवे समुद्र व वायु मार्ग से सफर करने वाले यात्रियों तथा ले जाने वाले माल पर सीमा कर, रेलवे के किरायों और भाड़ों पर टैक्स, समाचार पत्रों के क्रय–विक्रय और उन में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर टैक्स आदि विषय इस श्रेणी में आते हैं।
3. कुछ ऐसे टैक्स हैं जो संघ सरकार लगाती है, वही उनको वसूलती है, पर उस से हुई आय को केन्द्र और सम्बन्धित राज्यों के बीच वितरित कर दिया जाता है। ऐसे टैक्सों में औषधियाँ और श्रृंगार की वस्तुओं (जिसमें शराब, अफीम आदि मादक वस्तुओं का प्रयोग हुआ हो) के अतिरिक्त अन्य पदार्थो के उत्पादन पर लगाया गया उत्पादन कर उल्लेखनीय हैं।

4. आय कर से सम्बन्धित संविधान में ये उपबंध हैं कि कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर करों का आरोपण तथा संग्रह, संघ सरकार द्वारा किया जाएगा तथा उनका वितरण केन्द्र तथा राज्यों के बीच होगा। यह वितरण राष्ट्रपति के द्वारा वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार किया जाता है।

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संविधान द्वारा राज्य सरकारों को दी गई आर्थिक शक्तियाँ उन को सौंपी गई जिम्मेदारियों और उन के बढ़ते हुए कार्य क्षेत्र के अनुपात में अपर्याप्त हैं। इसीलिए संविधान में राज्य सरकारों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है।

संविधान का अनुच्छेद 275 संसद को इस बात का अधिकार प्रदान करता है कि वह ऐसे राज्यों को उपयुक्त सहायक अनुदान देने का उपबन्ध कर सकती है जिन्हें संसद की दृष्टि में सहायता की आवश्यकता है अनुच्छेद 285, 287, 288 तथा 289 में केन्द्र तथा राज्य सरकारों को एक–दूसरे के द्वारा कुछ वस्तुओं पर कर लगाने से मना किया गया है और उन्हें कुछ करों से विमुक्ति प्रदान की गई है। संविधान के अनुच्छेद 292 तथा 293 क्रमशः संघ तथा राज्य सरकारों को ऋण लेने का अधिकार भी प्रदान करते हैं।

वित्तीय आपात काल में राज्य सरकारों की आर्थिक शक्तियाँ बहुत सीमित हो जाती हैं और उनकी आय उन्हीं करों तक सीमित रहती है जिनका उल्लेख राज्य सूची में है। इस काल में, संघ सरकार की करों की आय को राज्य सरकारों में विभाजित अथवा आर्थिक अनुदानों के उपबन्धों को निलंबित किया जा सकता है। इस अवधि में राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित धन विधेयकों पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक समझी जा सकती है।

संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के बीच किया जाने वाला शक्ति विभाजन इस बात का प्रमाण है कि संविधान निर्माता जान बूझकर केन्द्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। इसका मूल कारण स्वतंत्रता के पश्चात् उत्पन्न होने वाली वह राजनीतिक परिस्थितियाँ थी, जिसमें विघटनकारी तत्व तेजी से फैल रहे थे और देश की एकता तथा सुदृढ़ता को बनाये रखना प्रमुख समस्या थी। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक था कि केन्द्र सरकार को शक्तिशाली बनाया जाये ताकि देश की एकता को बनाये रखा जा सके।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच टकराव

संविधान के लागू होने से चतुर्थ आम चुनाव तक भारत में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के सम्बन्ध सामान्यतया सहयोग और सद्भावना पर आधारित रहे और उनके बीच कोई विशेष टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई जिसका मूल कारण केन्द्र तथा लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस दल के प्रभुत्व का होना था। 1967 से पूर्व केन्द्र और राज्यों के बीच कुछ मामलों में अवश्य विरोध की स्थिति उत्पन्न हुई, लेकिन यह विरोध अन्तर्दलीय विरोध था और उन्हें पारिवारिक झगड़ों से ज्यादा महत्व नहीं दिया जा सकता। ऐसे अवसरों पर दल के हाईकमान या प्रधानमंत्री के हस्तक्षेप द्वारा इन झगड़ों का निपटारा होता रहा। लेखक सी.एस. पंडित के शब्दों में – ''गत चौबीस वर्षो में जब व्यावहारिक रूप से लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस दल के हाथों में सत्ता रही, केन्द्र सरकार ने एक पितृसत्ता के रूप में विकसित होकर अधीनस्थ इकाईयों को अपने दल के मुख्यमंत्रियों के माध्यम से नियंत्रित किया। इस बीच जो भी टकराव उत्पन्न हुए उनको दल के अन्दर ही तय कर दिया गया।''

1967 के आम चुनाव के पश्चात् भारत में कांग्रेस दल के प्रभुत्व का अन्त हुआ और आठ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई। इस राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप राज्यों की गैर कांग्रेसी सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार के बीच प्रत्येक कदम पर टकराव आरम्भ हुआ जिसका एक कारण कांगेस दल के विरूद्ध विपक्षी दलों में पाई जाने वाली द्वेष भावना थी। इसीलिए लगभग सभी गैर कांग्रेसी सरकारों वाले राज्यों की ओर से केन्द्र के बढ़ते हुए नियंत्रण के खिलाफ आवाज उठाई गयी और यह माँग की गयी कि राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्ता मिलनी चाहिए और इस दृष्टिकोण से केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों को नए सिरे से निश्चित किया जाना चाहिए। केन्द्र के विरूद्ध अधिकतम स्वायत्ता की माँग एक ओर बंगाल की संयुक्त मोर्चा सरकार की ओर से उठाई गई और दूसरी ओर तमिलनाडु में डी.एम.के. सरकार ने इसे एक आंदोलन का रूप दे दिया। अप्रैल 1970 में तमिलनाडु मे मुख्यमंत्री करूणानिधि ने यह भी नारा दिया कि ''सेल्फ रूल इन दि स्टेट्स एण्ड कंपोजिट रूल ऐट दि सेंटर'' और इस नारे को डी.एम.के. दल के संविधान में भी सम्मिलित किया गया। मुख्यमंत्री करूणानिधि ने यह भी नारा दिया कि ''भारत, भारत वालों के लिए और तमिलनाडु तमिल लोगों के लिए है।'' इसी प्रकार उड़ीसा में प्रगतिदल के नेता बीजू पटनायक ने अपने प्रदेश के आर्थिक साधनों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने और विदेशों से प्रत्यक्ष रूप से सहायता लेने की माँग की। पंजाब में अकाली दल की ओर से राज्यों के लिए अधिक से अधकि स्वायत्ता देने की माँग की गई और यह कहा गया कि रक्षा, विदेश सम्बन्ध तथा मुद्रा निर्माण के अतिरिक्त सारे अधिकार राज्यों के पास होने चाहिए, यहाँ तक कि उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों और राज्यपालों की नियुक्ति का अधिकार भी राज्य सरकारों को मिलना चाहिए।

राज्य सरकारों के विरूद्ध केन्द्र सरकार को यह शिकायत रही है कि राज्य सरकारें अपने दायित्व को पूरा करने में उदासीन रही है और वे केन्द्र द्वारा बनाई गई योजनाओं को कार्यान्वित करने में शिथिलता बरतती है। कृषि, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि कुछ ऐसे विषय हैं जो मुख्य रूप से राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में आते हैं। लेकिन इन क्षेत्रों में केन्द्र द्वारा बनाई गई योजनाओं में राज्यों ने पूरी दिलचस्पी नहीं ली है। यह भी कहा गया है कि कृषि विकास नियोजनों के क्षेत्र में राज्य सरकारों ने कोई विशेष रूचि का प्रदर्शन नहीं किया है और उन्होंने नए विचारों को ग्रहण करने तथा नए आविष्कारों से लाभान्वित होने के प्रति उदासीनता दिखाई है।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

यह देखा गया है कि साधारणतया राज्य सरकारें ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित करने में केन्द्र के साथ पूरा सहयोग नहीं करती जो उनके क्षेत्रीय हितों से ज्यादा मेल नहीं खाती। क्षेत्रवाद की भावना राष्ट्रीय विकास में किसी सीमा तक बाधक हुई है। केन्द्र सरकार की ओर से प्रायः राज्यों पर संकीर्णता का आरोप लगाया जाता है। राज्यों की ओर से बराबर यह कहा जाता है कि उनके आय के साधन अत्यधिक सीमित हैं और उन्हें अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार का मुँह देखना पड़ता है। यह बात किसी सीमा तक ठीक है, लेकिन इसमें भी संदेह नहीं कि राजस्व के जो स्रोत राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में हैं उन से वह पूरी तरह लाभ नहीं उठातीं। राज्यों में सत्तारूढ़ दल जनमत को अपने पक्ष में बनाए रखने के लिए और अलोकप्रिय होने के डर से विभिन्न प्रकार के करों से छूट देने की बराबर घोषणाएँ करता रहता है। इससे स्वाभाविक रूप से राज्य सरकारों की आर्थिक स्थिति पर खराब प्रभाव पड़ता है। राजनीतक कारणों से ही राज्य सरकारों ने कृषि से होने वाली आय पर कर लगाने में भी संकोच किया।

राज्यों के सम्बन्ध में यह शिकायत भी की जाती है कि वे स्वयं केन्द्र सरकार पर आर्थिक दृष्टि से आश्रित रहने के अभ्यस्त हो गए हैं और उनमें यह भावना विकसित होती रही है कि यदि कोई घाटा होता है तो केन्द्र सरकार स्वयं ही उसको पूरा करेगी। यही कारण है कि वे अपने आर्थिक साधनों का ठीक ढंग से प्रयोग नहीं करते और लगभग प्रत्येक राज्य में करों का काफी बकाया पड़ा हुआ है जिन्हें राज्य सरकारें वसूल करने में असमर्थ रही है। संघीय शासन प्रणाली के सुचारू रूप से चलने के लिए यह अति आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के बीच समुचित सामंजस्य हो और उनके बीच परस्पर सहयोग की भावना उत्पन्न हो।

प्रमुख सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो सिद्ध होता है कि भारतीय संविधान में एक संघात्मक व्यवस्था करते हुए केन्द्र व इकाइयों के बीच विषयों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचियों में किया गया है। इसके बावजूद केन्द्र व राज्यों के बीच समय–समय पर विवाद उठते रहते है। इन विवादों के समाधान के लिए शोधकर्त्ता द्वारा निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गये है यथा–

1. सक्रिय राजनीतिज्ञों को राज्यपाल पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।
2. केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 355 के तहत किसी राज्य में सेना भेजने से पहले सम्बन्धित राज्यों से परामर्श किया जाना चाहिए।
3. राज्यों में राष्ट्रपति शासन अन्तिम विकल्प के रूप में लागू हो।
4. समवर्ती सूची के मामलों पर केन्द्र सरकार व राज्यों में विचार–विमर्श होना चाहिए।
5. केन्द्र–राज्य में वित्तीय आवंटन में वित्त आयोग की भूमिका को सुदृढ़ किया जाए।
6. वित्त आयोग एवं नीति आयोग के बीच सामंजस्य जरूरी हैं।
7. राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित विधेयक पर केन्द्र की सहमति या असहमति छः माह में ही राज्यों को प्रेषित कर दी जानी चाहिए।
8. भारत की एकता, अखण्ड़ता तथा भविष्य में सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए सहकारी संघवाद का प्रतिमान ही अपनाना चाहिए।
9. राज्यपाल की अवधि पांच वर्ष निर्धारित होनी चाहिए और राजनीतिक कारणों से इसे 5 वर्ष से पूर्व नहीं हटाया जाना चाहिए।
10. केन्द्र एवं राज्यों को दलगत राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रहित के बारे में सोचकर अपनी नीतियां बनानी चाहिए।

निष्कर्ष

संविधान निर्माताओं ने तात्कालीन आवश्यकताओं में यह मानते हुए कि केंद्र ही देश की एकता को बनाये रख सकता है शक्तिशाली केन्द्र की धारणा को अपनाया। संविधान सभा में कहा गया था कि भारतीय राज्य ''सहकारी संघवाद'' की अवधारणा पर आधारित होगा। लेकिन संविधान लागू होने के बाद संघीय संस्थाएं केंद्र सरकार के प्रभुत्व के संदर्भ में स्थापित की जाने लगी। राष्ट्र निर्माण व विकास प्रक्रिया में केंद्र सरकार ने अगुआ की भूमिका हथिया ली। आरम्भ से ही केंद्र अपनी सर्वोच्च स्थिति के प्रति सचेत रहा। यही नहीं जल्द ही केंद्र ने राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करना भी शुरू कर दिया।

समय बीतने के साथ विभिन्न कारणों से केंद्रीकरण की यह प्रक्रिया मजबूत होती गयी। इन कारणों व दबावों में केंद्र सरकार पर कांग्रेस का प्रभुत्व, राजनीतिक पार्टीयों में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव, केन्द्रीय नियोजन प्रक्रिया, केंद्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता और राज्यों के अधिकारों का हनन करने के लिए संावैधानिक व्यवस्था का दुरूप्रयोग शामिल है। केन्द्रीयकरण के मजबूत होने का परिणाम यह है कि आज केंद्र हर मामले में प्रवर है। राज्यों की परियोजनाओं को मंजूरी देना केंद्र की इच्छा पर है। वह राज्यों की कानून व व्यवस्था का चौकीदार बन बैठा है। केंद्र को यह अधिकार है कि वह राज्यों की विधानसभाओं द्वारा पारित बिल वीटो कर दे, भले ही उस बिल पर राष्ट्रपति की सहमति आवश्यक न हो। केंद्र अपनी इच्छा से राज्यों को अनुदान बांटता है और जब मन चाहे तब राज्य सरकारों को बर्खास्त करने का अधिकार रखता है।

क्षेत्रीय दलों के मजबूत होने और केंद्र सरकार के निर्णय में उनके द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाने और उसमें भागीदारी होने तथा भारतीय दलीय व्यवस्था की प्रकृति में परिवर्तनों से आम राय इस ओर बनी है कि भारत में संघीय व्यवस्था को मजबूत करना, विकेंद्रीयकरण तथा राज्य स्तर पर स्वायत्तता आवश्यक है। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि जो भी व्यक्ति केंद्र सरकार में सत्ता में आ जाते हैं वे दलीय और व्यक्तिगत स्तर पर इस सम्बंध में अपनी वचनबद्धता के बावजूद विकेंद्रीकरण की ओर कदम उठाने से हिचकिचाते हैं। देश की अखण्डता को बनाए रखने के लिए, समाजिक आर्थिक विकास को गति प्रदान करने एवं सुनिश्चित प्रशासन चलाने के लिए संघीय व्यवस्था को मजबूत करने का निर्णय लेना ही होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कश्यप, सुभाष : यूनियन स्टेट रिलेशन इन इण्डिया, द इन्स्टीट्यूट ऑफ कान्सटीट्यूशन एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडी, नई दिल्ली, 1969*
2. *कूर्यन, के., मेथ्यू और : सेन्टर स्टेट रिलेशन्स, मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड वर्गीस, पी. एन. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1981*
3. *चतुर्वेदी, गीता : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2002*
4. *चन्द्रा, अशोकः फेडरलिज्म इन इण्डिया, लन्दन एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 1968*
5. *जैन, धर्मचन्द : केन्द्र–राज्य सम्बन्ध, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1999*
6. *जोन्स, डब्लू.एच मौरिस : भारतीय शासन एवं राजनीति, सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली, 1970*
7. *पणिक्कर, के.एम., : इण्डियन स्टेट्स एण्ड द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, कौशल प्रकाशन, दिल्ली, 1985*
8. *व्हीयर, के.सी., : फेडरल गवर्नमेन्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1963*
9. *संथानम, के., : यूनियन स्टेट रिलेशन इन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1963*
10. *सिंह, भवानी, : गवर्नर रोल आइडेंटीफिकेशन एण्ड सरकारिया कमीशन, प्रिंटवेल पब्लिकेशन, जयपुर, 1991*
11. *सीतलवाड़, एम. सी., : यूनियन एण्ड स्टेट रिलेशन्स–अण्डर दी इण्डियन कॉन्स्टीयूशन, कलकत्ता, 1974*
12. *जैन, एस.के. 'इण्डियन फेडरलिज्म' कल्पाज पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2017*
13. *रॉय, हिमांशु, सिंह, महेन्द्र प्रसाद, 'इण्डियन पॉलिटिकल सिस्टम' पियर्सन, दिल्ली, 2018*